A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

राजस्थान की समग्र गायकी मांड में प्रयुक्त होने वाले लोक वाद्य

Khushmita Shekhawat[1], Dr. Gaurav Shukl[2]

1 Research scholar, Music Department, Jai Narain Vyas University, Jodhpur
2 Assistant Professor, Music Department, Jai Narain Vyas University, Jodhpu

OPEN ACCESS

सारांश

मांड गायकी राजस्थान की अपनी प्रसिद्ध गायिकी है। यह एक लोक गायकी है जिस पर राजस्थान के समाज, परंपराओं, तीज-त्योहारों व यहाँ के राजघरानों का स्पष्ट रूप से प्रभाव देखने को मिलता है। वहीं इसमे प्रयुक्त वाद्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान है जो मांड गायकी में रस वृद्धि के भी कारक है। जहाँ मांड गायकी विश्व स्तर पर राजस्थान की पहचान बनी हुई है वहीं इसमें प्रयुक्त वाद्य लुप्त होते जा रहे हैं। समय के साथ-साथ मांड गायकी में लोकवाद्यों के साथ शास्त्रीय वाद्य एवं नवीन वाद्यों का भी प्रयोग कलाकार करने लगे हैं।

उद्देश्य एवम् महत्व- मांड गायकी एक प्रसिद्ध गायकी है, जो तकनीकी सत्यता से नई पीढ़ी में और लोकप्रिय हो रही है। वहीं इससे जुड़े वाद्यों के बारे में आज बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। साथ ही लिखित सामग्री का भी आभाव होने कारण आज की युवा पीढ़ी इससे जुड़े वाद्यों के बारे अधिक जानकारी नहीं रखती है। इस गायकी के साथ प्रयोग में लाए जाने वाले वाद्य व मांड गायकी से जुड़े लुप्त होते वाद्य एवं इन वाद्यों से जुड़े कलाकार इन बिंदुओं पर प्रकाश इसे शोध पत्र के द्वारा डाला जाएगा।

मुख्य शब्द- मांड, वाद्य, लोक वाद्य, संगीत, लोक संगीत

प्रस्तावना

राजस्थान भारत का एक ऐसा प्रदेश है, जो अपनी संस्कृति, कला एवं परम्परा की उत्कृष्टता के कारण केवल देश ही नहीं अपितु पूरे विश्व के नक्शे पर अपनी अनूठी छाप अंकित किए हुए है। किसी भी स्थान विशेष के बारे में जानना हो तो वहां की लोकसंस्कृति से अच्छा माध्यम और कोई नहीं। उससी लोकसंस्कृति से साक्षात्कार करने में वहाँ का लोक संगीत सबसे उत्कृष्ट माध्यम साबित होता है। लोकसंगीत के द्वारा किसी स्थान विशेष एवं वहीं के लोगों द्वारा उनकी संस्कृति को दर्शाया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया का धरातल संगीत है।

भारतीय परम्परानुसार संगीत का सम्बन्ध वेदों से मान्य है। भारतीय संगीत शाखाएँ दो भागों में विभाजित है 1.शास्त्रीय संगीत एवं 2.लोक संगीत। हमारा शास्त्रीय संगीत लोकसंगीत का ही विकसीत रूप है। लोकसंगीत की उत्पत्ती एक प्राकृतिक प्रक्रिया से मान्य है, जो मनुष्य के विकास के साथ ही प्रारंभ हुआ। अत: लोकसंगीत का जन्म लोकमानस से हुआ है।लोक संगीत दो शब्दों के मेल से बना है- लोक+ संगीत। अर्थात लोक संगीत का अर्थ है- लोक में प्रचालित संगीत, लोकमानस में रचा बसा संगीत । लोकसंगीत अर्थात लोगों का संगीत। पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरिता होता आया है। लोक संगीत जनमानस की आत्मा है। लोक संगीत लोगो के जीवन में आए परिवर्तनों के अनुसार उनकी भावनाओ के साथ बदले हैं। राजस्थान के लोक संगीत की गूंजे आज पूरे विश्व में सुनाई देती है। लोक संगीत 3 मुख्य भाग से मिलकर बना है- 1.लोक गीत 2.लोक वाद्य 3.लोक नृत्य।

लोक संगीत का मूल आधार लोक - गीत है। जिन्हें विभिन्न अवसरों पर सामूहिक रूप में गाया जाता है। लोक शब्द से अभिप्राय व्यक्तियों के ऐसे समूह से होता है। जो सामान्य संस्कार, सामान्य गौत्र, सामान्य चिन्तन, सामान्य शास्त्र ज्ञान आदि तत्वों से परिपूर्ण होता है। इस दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय मानव-समाज को भारतीय 'लोक' कहा जा सकता है। इस लोक की भावना को प्रकट करने वाली वाणी को लोकगीत कहते हैं। इस प्रकार लोक-उद्‌गार से लोकगीते का जन्म होता है। 'ग्रिम एन्सइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका के अनुसार एक लोकगीत स्वत: उद्‌भूत होता है। आदिम-मानव के संगीत को लोकगीत कहा जाता है। अतः इन्हें मानवीय हृदय की अनुभूति कहा जा सकता है। इसके साथ ही इन्हें प्रकृति के उद्‌गार भी कहा जा सकता है।

मांड गायन शैली

राजस्थान वीरो की भूमि रही है, इन वीरो की वीर गाथाओं व राजस्थान के रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार को संजोय रखने में यहाँ के संगीतज्ञों ने अपनी कविताओं को धुन में पीरो कर यहाँ के राजघरानों की शोभा बनाई रखी व इस मरु प्रदेश की कहानीयों को यहाँ के लोक संगीत के माध्यम से अमर कर दिया। इस लोक संगीत में मांड की वैविध्य पूर्ण विशिष्ट परम्परा आती है। यह संगीतज्ञ राजघरानों में नियुक्त किए जाते थे, इनकी अतुल्य प्रतिभा के कारण मांड गायन शैली समय के साथ निखरती चली गई। अर्थात यह कहा जा सकता है की इन राजघरानों की ही यह देन रही की राजस्थान की विशिष्ट गायन शैली 'मांड' तब से लेकर अब तक जीवतं है। यह गायकी एक सम्पूर्ण गायन विद्या है। इसमें कोई सीमा का बंधन नहीं है कि मांड केवल

इन्हीं गीतों को लेकर गाया जाये या इसकी एक भाषा लिपिबद्ध रही हो। यह तो वह विद्या या राग है जिसमें कैसी भी शब्द शैली क्यों न हो स्वरबद्ध की जा सकती है। वह चाहे डिंगल-पिंगल, हिन्दी, उर्दू, ब्रजभाषा आदि क्यों न हो। यही कारण है कि अन्य लोक गीतों की धुनें भले ही जन मानस को, इतना प्रभावित न करती हों पर राजस्थान की विशिष्ट गायकी 'मांड' को दुनिया का कौना -कौना बड़े चाव से सुनता है। हमारे राजस्थान के सभी राजा-महाराजाओं ने या कवियों ने समयानुसार परिस्थियों को देखते हुए अपने-अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए और समाज को समझाने के लिए कविताएं लिखी जिन्हें हम माँडना या लिखना कहते हैं। इसे जब अपने मनोगत भावों से गाया जाने लगा तो यह माँडना सामाजिक परम्पराओं का सौष्ठव गायन कहलाया जिसे "मांड" कहा जाने लगा। राजस्थान में एक प्रान्त है जिसे 'मड' क्षेत्र के नाम से जाना जाता था वही कालांतर में माड हो गया। वहां की क्षेत्र विशेष गायकी को ही 'माड' क्षेत्र का नाम दिया गया जो कालान्तर में "मांड" नाम से जानी गई।

इसके अलावा राजपूताना के शिलालेखों में 'मांड' जैसलमेर राज्य का सूचक प्राप्त होता है। श्रृंगारिक तत्व लिए यह गायन शैली ठिकाना विशेष से सम्बंध रखती है। भातखंडे जी के अनुसार मालवा और राजपुताना प्रान्त में इसकी उत्पत्ती हुई। मांड के लिए कहा जाता है मांड इसका अपभ्रंश नाम है। इसका वास्तविक नाम 'मड' हुआ करता था, जोकि राजस्थान के जैसलमेर प्रान्त में है। लोक परम्परा का हिस्सा होने के बावजूद, मांड की शैली कई विद्वानों द्वारा शास्त्रीय मानी गई है क्योंकि इसे कभी भी केवल लोक रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि यह गायन में कठिन और जटिल है और इसके लिए गायन कला में विशेषज्ञता और ज्ञान की आवश्यकता होती है।शास्त्रीयता की दृष्टि से मांड, एक देशी राग माना गया है। शास्त्रीयता की आंशिक झलक लिए हुए मांड को उपशास्त्रीय संगीत के टप्पा, ठुमरी,कजरी, होरी, दादरा इत्यादि श्रेणी में रखा जा सकता है। भातखण्डे या अन्य शास्त्र वेताओं ने इसे लोकधुन ही माना है।

"अतिथि देवो भवः" समस्त भारत में इस सुक्ती द्वारा अतिथि को भगवान का दर्जा देकर व्यक्ति विशेष को आदर सत्कार की भावना से देखता है। उसी प्रकार है 'केसरिया बालम आवो नी पंथारो म म्हारे देश' जो की मांड गायन शैली में एक प्रचलित लोकगीत है जो पूरे विश्व में राजस्थान की पहचान बने हुए है जिसको मांड गायकी के अंतर्गत रखा गया है। लेकिन मांड केवल केसरिया बालम तक ही सीमित न रह कर मूमल, बायरिया, हालो बन्ना, काछबियाँ आदि तक शामिल रहा है जो की मांड के हसमुख गीतों में से है। मांड गायन शैली में गीतो का जो महत्त्व है उतना ही महत्वपूर्ण है मांड में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का योगदान। गायकी हो और वाद्यों का प्रयोग ना किया जाए तो कुछ अधुरा सा आभास होता है। मांड गायकी में राजस्थान के अपने लोक वाद्यों का प्रयोग इस गायकी में पूर्णता का आभास कराता है। वैदिक काल से ही भारतीय संगीत की परंपरा का ऐतिहास देखा जाता है। उस वक्त से ही संगीतिक वाद्यों की उत्पत्ती मानी जाती है। सिंधु घाटी सभ्यता से भारतीय संगीत वाद्य यंत्रों का ऐतिहास शुरू होता है। जोकि लगभग 3000 ईसा पूर्व से अपने अस्तित्व में थी। जहां से ढोल के जैसा एक वाद्य यंत्र प्राप्त हुआ है। इस प्रकार वाद्यों का प्रमाणित स्त्रोत वेदों को माना जाता है। वहीं भरत ने नाट्य शास्त्र में वाद्यों को चार मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

1. अवनद्ध वाद्य। 2. घन वाद्य। 3.सुषिर वाद्य। 4.तत वाद्य

मांड गायकी में प्रयुक्त लोक वाद्य

राजस्थान में प्रयुक्त होने वाले लोक वाद्ययंत्र विभिन्न उपलब्ध स्थानीय सामग्रियों से कुशलता से बनाए जाते हैं, जो इन्हें विशिष्ट ध्वनि प्रदान करते हैं। लोकवाद्य लोक संस्कृति का अंग ही होते हैं। सूखी लौकी की खोल, बांस की नलियां, और पकी हुई मिट्टी के बर्तन आदि इन वाद्ययंत्रों के निर्माण में मुख्य रूप से प्रयोग में लाए जाते हैं एवं लोक वाद्य भी शास्त्रीय वाद्यों के सम्मान 4 श्रेणियों 1.तत वाद्य 2. सुषिर वाद्य 3. घन वाद्य 4. अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में वर्गीकृत किए जाते हैं। मांड गायकी जो अपने आप में पूर्ण है उसमें वाद्यों का प्रयोग इस गायकी को अलग ही मिठास से भर देता है। इसमें प्रयुक्त होने वाले लोक वाद्य निम्न हैं-

1.कमायचा

मांड गायकी में प्रयुक्त होने वाला वाद्य कमायचा तत (तार) वाद्य की श्रेणी में रखा जाता है। राजस्थान के जैसलमेर-बाड़मेर क्षेत्र की मांगणियार (लंगा) जाति का वाद्य कमायया शीशम, आम या रोहिड़ा की लकड़ी से बनाया जाता है। इसकी तबली अपेक्षाकृत काफी बड़ी तथा अर्ध अण्डाकार शक्ल में होती है। तबली को चमड़े की झिल्ली से मढ़ा जाता है।इसमें लगने वाले तारों की कुल संख्या 16 होती है। इन तारों को तीन वर्गों में विभाजित कर अलग-अलग नामों से जाना जाता है। प्रथम वर्ग के तीन मुख्यतार तांत (आंत) के होते हैं। इनको 'रौंदा' कहा जाता है। ये तार सा.सा. प. में मिलाये जाते हैं।दूसरे वर्ग के नौ तार, पक्के लोहे के होते हैं। इनको 'झाड़े' (तरबा) कहा जाता है। ये तार ध.नी.सा.रे.ग.म.प.ध.नी. क्रम से मिलाये जाते हैं।

तीसरे वर्ग के चार तार 'झीलें' (बड़े तरबे) कहलाते हैं। ये भी पक्के लोहे के होते हैं। इनको सा.रे.ग.म. पर मिलाया जाता है। इस वाद्य को सारंगी की तरह गज से बजाया जाता है।इसका गज सारंगी के गज से लंबा होता है। यह कुम्मट की लकड़ी का बनता है तथा इसमे घोड़े की पूंछ के बाल लगाये जाते हैं। गज का प्रयोग सामान्यतः मुख्य तीन तारों पर होता है परन्तु अन्य तारों पर भी संभव होता है। बड़ा गज, बड़ी तबली तथा अधिक संख्या का तार समूह होने के कारण इस वाद्य की आवाज में गंभीरता एवं गूंज होती है।

कमायचा के प्रसिद्ध वादक- पद्म श्री साकर खान कमायचा के प्रसिद्ध वादक रहें हैं। 2012 में भारत सरकार द्वारा इन्हें पद्म श्री से सम्मानित किया गया। साकर खान का सम्बंध राजस्थान के मांगणियार समुदाय से रहा है, कमायचा इस समुदाय का प्रमुख वाद्ययंत्र है। साकर खान के बाद की इनकी आगामी पीढ़ी में रफीक खान, घेवर खान और दरे खान इनकी इस कला को संजोए रखने में प्रयासरत है। वहीं कमायचा वादन की बात हो और दप्पु खान का नाम न लिया जाना सही नहीं है। दप्पु खान जैसलमेर के प्रसिद्ध मांड गायक एवं कमायचा वादक थे,2021 में इनका देहान्त हो गया।

2.अलगोजा

यह एक सुषिर(फूंक) वाद्य है। राजस्थान के लोक वाद्यों के अन्तर्गत 'अलगोजा' दो बांसुरियों का युग्म का साज है। इसकी बांसरियों का निर्माण बांस की नलिका अथवा छोटी लंबी लकड़ी को अन्दर से पोला करके किया जाता है। वे लगभग एक फुट की होती है। नलिकाओं के ऊपर के सिरों को तिरछा छीलकर उसमें जिभियां लगा दी जाती हैं। इन बांसुरियों में प्रत्येक में चार-चार छेद होते हैं। कहीं-कहीं पांच-पांच या छः छः छेदों वाली भी देखी जाती हैं। इस वाद्य को बनाते समय दोनों बांसुरियों को एक साथ मुंह से दबाकर फूंका जाता है तथा दोनों हाथों की तीन-तीन अंगुलियों से बजाया जाता है। बांसुरियों की बनावट नर-मादा की प्रकृति की होती है। ये एक दूसरे की पूरक होती है। इस वाद्य का स्वर ऊंचा मिलता है इसलिये गायक को भी ऊंचे स्वर में गाना पड़ता है। यह उत्सव वाद्य माना जाता है। चरवाहों का यह जातीय वाद्य है। अलवर, भरतपुर, अजमेर, कोटा, बूंदी-टौंक क्षेत्रों में इसे नृत्य व गायन के साथ मुख्यतः बजाया जाता है। बाड़मेर क्षेत्र के राणका फकीरों का यह अतिप्रिय वाद्य है। इस वाद्य का स्वतन्त्र वादन भी होता है तथा अन्य वाद्यों की संगति में बजाया जाता है। 'सतारा' नामक अन्य लोक वाद्य इससे मिलता-जुलता वाद्य है।

अलगोजा के कलाकार- हसन खान लंगा अलगोजा के प्रसिद्ध कलाकार हैं। अनवर खान मांगणियार यह मांड और पनिहारी जैसे लोकगीतों के साथ अलगोजा की धुन को मिलाकर प्रस्तुत करते हैं। वहीं अलगोजा के उत्कृष्ट कलाकारों में से एक है बाड़मेर के वृद्ध धोधे खान, उस्ताद खामिसू खान एवं अलगोजा को नाक से बजाने वाले दुनिया के एकमात्र कलाकार रामनाथ चौधरी अलगोजा के प्रसिद्ध वादकों में शामिल हैं।

3.खड़ताल

घनवाद की श्रेणी में आने वाला यह वाद्य अत्यंत ही सुरीला है 'खड़ताल' जोधपुर (राजस्थान) के पश्चिम में बाड़मेर-जैसलमेर के लंगा-मांगणियारों (वंशानुगत लोक कलाकार) के प्रमुख वाद्यों में से एक वाद्य है। यह समूह वाद्य है जो शीशम, रोहिड़ा या खैर की लकड़ी की, चार अंगुल चौड़ी व दस अंगुल लंबी चिकनी चार पट्टियों के रूप में होता है। इसे बजाने के लिये वादक अपने प्रत्येक हाथ में दो-दो पट्टियां, अंगुठे और अंगुलियों में, पकड़ लेता है तथा इनको परस्पर आघातित कर कलई से संचालित करते हुए ध्वनि निकालता है। यह लयात्मक घनवाद्य है। कुशल वादक इसके वादन में तबले के बोल भी निकाल सकता है। काष्ठ खण्ड से निर्मित होने से इसे 'कठताल' तथा हाथ से बजाये जाने के कारण 'करताल' नाम से भी संबोधित किया जाता है। संगीत रत्नाकर में 'कम्रा', 'कम्राट' अथवा 'कम्रिका' नामक एक प्राचीन वाद्य का उल्लेख किया गया है जिसमें खैर या ठोस बांस की, दो अंगुल चौड़ी तथा बारह अंगुल लंबी, चिकनी-पतली, चार पट्टियां होती हैं। इसकी वादन प्रक्रिया 'खड़ताल' जैसी ही, अंगुठे एवं अंगुलियों में पकड़कर, परस्पर आघात एवं कलई के संचालन से करने का उल्लेख संगीत रत्नाकर में है। इससे प्रकट होता है कि 'खड़ताल' जैसा वाद्य प्राचीन काल में भी प्रचलित था जिसे इन लोक कलाकारों ने किंचित परिवर्तित स्वरूप में अपनाये रखा है।

खड़ताल के मुख्य कलाकार-सिद्धीक खान मांगणियार को खड़ताल वाद्य लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया जाता है। इन्हें "खड़ताल का जादूगर " भी कहा जाता है। इनके अलावा उस्ताद गफूर खान मांगणियार, गाजी खान बरना, देसराज जी, भुंगर खान जैसे नाम भी खड़ताल के अन्य अच्छे वादकों में शामिल हैं।

4.ढोलक

ढोलक वैसे तो शास्त्रीय संगीत में बहुत प्रचलित है किन्तु लोक संगीत में भी इस अवनद्ध (आनद्ध) वाद्य का बहुत प्रयोग होता है। राजस्थान के लोक संगीत के वाद्यों में 'ढोलक' अत्यन्त लोकप्रिय वाद्य है। यह 'ढोल' की श्रेणी का छोटा वाद्य है, जिसे कई छोटे-बड़े रूपों में देखा जाता है। इसका खोल सागवान, आम, नीम, शीशम आदि की लकड़ी से बनाया जाता है। खोल की लंबाई औसतन डेढ़ फुट की होती है। दोनों ओर के खुले मुखों का व्यास

लगभग छः इंच से दस इंच तक का (खोल की बनावट के अनुसार) होता है। खोल का मध्य भाग उभरा हुआ होता है जबकि दोनों तरफ के खुले मुख मध्य भाग की अपेक्षा संकरे होते हैं। नर (धर्रा) कहलाने वाला मुख मादी वाले मुख से कुछ बड़ा होता है। इसको मढ़ने के लिए बकरे के चमड़े की पुड़ियां बनाई जाती है। मादी यानी छोटे वाले मुख पर पतले चमड़े की पुड़ी लगाई जाती है जबकि नर, बड़े वाले मुख पर अपेक्षाकृत मोटे चमड़े की पुड़ी लगाई जाती है। मढ़ने की प्रक्रिया ढोल जैसी ही होती है। दोनों पुड़ियों के सिरों को कुछ समेटकर गजरे बनाये जाते हैं, जिन्हें दोनों मुखों पर ढक्कन की तरह फिट करके, सूत की डोर गजरों में डालते हुये गोलाई के चारों ओर परस्पर बांध दिया जाता है।

डोरी डालते समय उसमें पीतल या लोहे के छल्ले (कड़ियां) पिरो दी जाती है, ताकि उनके माध्यम से डोरी में तनाव दिया जा सके। ढोलक को उतारने व चढ़ाने तथा स्वर में मिलाने की प्रक्रिया, इन कड़ियों की सहायता से की जाती है। मढते समय इसके नर वाले भाग की पुड़ी के भीतरी सतह पर, चार पांच इंच के वृत्तनुमा, राल से बने विशेष पदार्थ का लेप चिपकाया जाता है। इसे मसाला कहते हैं। नर की आवाज में गंभीरता एवं गूंज, इसी मसाले के कारण होती है। आजकल डोरी के स्थान पर लोहे की पतली छड़ के चार-पांच इंच के टुकड़ों के, अंकुश बनाकर, गजरों में अटका कर, खोल पर, नट बोल्ट से कस दिये जाते हैं। पुड़ियों में तनाव देने का कार्य इन्हीं से किया जाता है। इसे 'नटवाली' ढोलक कहा जाता है। शास्त्रीय संगीत व राग-रागिनियों के निर्धारित ठेके, ताल, बंदिशें, लय, मात्राएं, तोड़े, मुरकै आदि जो तबले, मृदंग आदि वाद्यों से बजाये जाते हैं, वे सब, वादक की कुशलता से, ढोलक से भी बजाये जा सकते हैं।

ढोलक के कलाकार- यूं तो शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने के कारण ढोलक के कई कलाकार रहे हैं, लेकिन लोक संगीत में प्रमुखता से प्रयोग में लाए जाने के कारण ढोलक के लोक कलाकारों की संख्या भी बहुत है। जैसे बाड़मेर के भुंगर खान जो कई पारंपरिक वाद्य यंत्रों के साथ ढोलक भी बजाते हैं। फ्यूज़ खान, महरदीन खान, अल्लादीन खान और करीम खान लंगा जैसे कई कलाकारों के नाम हैं , जो वैसे तो मुख्य रूप से मांड गायक हैं, लेकिन संभवतः वे भी ढोलक जैसे वाद्ययंत्रों का उपयोग करते हैं।

5.खंजरी

राजस्थान में खंजरी वाद्य का प्रचलन काल-बेलियों व जोगियों में अधिक है। लेकिन भजन-कीर्तन के आयोजनों में भी इसका प्रचलन आम तौर पर देखा जाता है। यह चंग और डफ की श्रेणी का छोटा वाद्य है। यह कई तरह के रूपों में प्रचलित है। छोटी खंजरी का घेरा करीब तीन-चार इंच की लकड़ी की पट्टी से बनाया जाता है, जिसका व्यास लगभग छः इंच का होता है। इसमें झांझ नहीं लगाये जाते।

बड़े घेरे एक से डेढ फुट के व्यास वाले होते हैं। चौड़ाई चार-पांच अंगुल की होती है। चंग या डफ की तरह इसका एक मुख चंदन-गौह या बकरी की खाल से मढ़ दिया जाता है। घेरे की गोलाई में लंबे-लंबे छेद कर उनमें, छोटी-छोटी, दो-दो, तीन-तीन, झांझें (पीतल की चकरियां) कील लगाकर पिरो दी जाती है। हाथ की थाप से वादन करते समय इन झांझों से छन् छन् की मधुर झंकार होती रहती है। इसके घेरे लोहे, पीतल की चद्दर या लकड़ी की पट्टी से बनाये जाते हैं। आज कल प्लास्टिक के घेरे भी बनने लगे हैं। कहीं-कहीं झांझों के स्थान पर घुंघरु भी लगाये जाते हैं। खाल से मंडित होने के कारण यह अवनद्ध वाद्य माना जाता है तथा झाझें या घुंघरु संलग्न कर देने के कारण इसमें घनवाद्य के लक्षण भी सम्मिलित हो गये हैं। यह वाद्य वर्तमान में जितना लोकप्रिय है, उतना ही लोक प्रिय यह प्राचीन काल में भी था। 'संगीत रत्नाकर' में 'करचक्र' नामक वाद्य का उल्लेख किया गया है जिसे लौकिक में 'दायरा' या 'खंजरी' बताया है। पाश्चात्य संगीत के वाद्यों में 'टेम्बोराइन' (Tambourine) नामक वाद्य भी ठीक ऐसा ही है। मांड गायकी में इस वाद्य का प्रयोग लयबद्ध संगत के लिए किया जाता है।

6.सारंगी

प्राचीन काल में सारंगी घुमक्कड़ जातियों का वाद्य था। इस वाद्य यंत्र का प्राचीन नाम "सारिंदा" है जो कालांतर के साथ "सारंगी" हुआ। राजस्थान में सारंगी के विविध रूप दिखाई देते हैं। मीरासी, लंगे, जोगी, मांगणियार आदि जाति के कलाकारों द्वारा बजाये जाने वाला यह वाद्य गायन तथा नृत्य की संगीत की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। संगत वाद्य के साथ सह स्वतंत्र वाद्य भी हैं। इसमें कंठ संगीत के समान ही स्वरों के उतार-चढ़ाव लाए जा सकते हैं। वस्तुत: सारंगी ही ऐसा वाद्य है जो मानव के कंठ के निकट है।

सारंगी के प्रसिद्ध कलाकार

पंडित राम नारायण: उदयपुर के रहने वाले, इन्हें सारंगी को शास्त्रीय संगीत में एकल वाद्ययंत्र के रूप में लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया जाता है।

लाखा खान: मांगणियार समुदाय से सम्बन्ध रखने वाले पारंपरिक प्यालेदार सिंधी सारंगी वादक हैं। उन्हें पद्मश्री और संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार जैसे कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

असिन खान लंगा: यह एक गायक एवं सारंगी वादक हैं, जो पश्चिमी राजस्थान के सारंगिया लंगा संगीत समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं।

7. हारमोनियम

जहां हारमोनियम शास्त्रीय संगीत में प्रमुखता से संगत के लिए प्रयोग होता है। वहीं लोक संगीत में भी हारमोनियम की संगत का अलग एवं महत्वपूर्ण स्थान हैं। आज के समय में हारमोनियम वाद्य का लगभग हर लोक संगीतिक प्रस्तुति में मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा की आज के दौर में हारमोनियम प्रस्तुतियों का पूरक है। ठीक उसी प्रकार मांड गायकी में भी हारमोनियम प्रयोग प्रस्तुति पूरक के रूप में किया जाता है। विगत एक शताब्दी में हारमोनियम हिन्दुस्तानी संगीत का सर्वाधिक लोकप्रिय व आम वाद्य बन चुका है; विशेषतः उत्तर भारत में जहां हारमोनियम का प्रयोग मुख्यतः संगत के लिये किया जाता है। तानपुरे और सारंगी की तुलना में हारमोनियम की संगत का महत्त्व तेजी से बढ़ा है।

हारमोनियम शब्द का सम्बन्ध हारमोनी' (Harmony) से है अर्थात एक विशिष्ट सर समुदाय, जिसके सहारे प्रमुख संगीत रचना का सौन्दर्यवर्धन हो। साधारण शब्दों में किसी भी एक गीत, गजल, ठुमरी अथवा सांगीतिक बन्दिश मेलोडी (Melody) को 'हारमोनिक संगत देकर उसे अधिक रसात्मक व भावनात्मक बनाना ही हारमोनियम का प्रमुख उद्देश्य है। हारमोनियम हिन्दुस्तान में मूलतः विदेश (यूरोप) से आया एक पश्चिमी वाद्य है, जैसे कि गिटार, मेण्डोलिन एवं वायलिन (बेला), जो आज भारतीय संगीत के अपृथक् समन्वित वाद्य बन चुके हैं।

हारमोनियम के मुख्य वादक - यूँ तो भारत में आज हारमोनियम के असंख्य उस्ताद हैं, किन्तु राजस्थान के मुख्य हारमोनियम वादकों में 2006 के पद्मश्री से सम्मानित उस्ताद महमूद धौलपुरी सबसे प्रसिद्ध है वहीं अन्य कलाकार जुम्मे खाँ, मांगे खां आदि गायक भी हारमोनियम वादकों में सम्मिलित हैं।

निष्कर्ष

मांड गायकी, रेतीले राजस्थान की संस्कृति से पूरे विश्व को परिचित कराती है। वास्तव अपने में यह संपूर्ण गायन विद्या है। जिसके संरक्षण में राजस्थान के कलाकारों का अतुल्य योगदान रहा है। जितना महत्व मांड गायकी में गायन विद्या का है उतना ही महत्त्व इसमे वादन का भी है। मांड गायकी में प्रयुक्त होने वाले लोक वाद्य इस गायकी में रस वृद्धि कर देते हैं। आज नवीन वाद्यों का प्रयोग भी इस गायकी में फ्यूजन के लिए किया जाता है, जहां एक ओर इस गायकी में नवीनता तो आती ही है तो दूसरी तरफ अपने खुद के लोक वाद्यों से आज की पीढ़ी अपरिचित होती जा रही है। जिस कारण इससे जुड़े लोक वाद्य लुप्त होते जा रहे है। अतः जहाँ तकनीक की सहायता से जन मानस लोक संगीत के क्षेत्र में भी नए आयाम की तरफ अग्रसर है वहीं तेजी से बदलते तकनीकी परिवेश के कारण लोग अपनी लोक संगीत परंपराओ से भी दूर होते दिखाई दे रहे हैं। ऐसे में अति आवश्यक है मांड गायकी के लुप्त होते इन लोक वाद्यों के संरक्षण में इन वाद्यों और इन वाद्यों से जुड़ी वादन विद्या का प्रचार- प्रसार किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 व्यास, चन्द्रकान्ता, राजस्थानी लोकगीत साहित्य, समाज और संस्कृति, प्रभाकर प्रकाशन, ईस्ट दिल्ली, 2021
2 भट्ट. कृष्ण मोहन, राजस्थान की रजवाड़ी गायकी मांड, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम, 2019
3 सहाय, डॉ. हनुमान, राजस्थान की शैली माड (उद्गम एवं विकास) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय, 2019
4 ठाकुर, जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता, 2010
5 भातखण्डे, पं. विष्णुनारायण, संगीत शास्त्र, प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ भाग, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1937, 1978
6 बोराणा, रमेश, राजस्थान के कला वाद्य, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम, 2008
7 चुंडावत, लक्ष्मीकुमारी, स्वर्णकार, रमेशचन्द्र, 'राजस्थान के रिती रिवाज' पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, (2002)